International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(5): 16-19

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(5): 16-19
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-07-2018
Accepted: 07-08-2018

Dr. JR Kashyap
Associate Professor in Sanskrit, Govt. PG College Seema, Rohru, Distt. Shimla, Himachal Pradesh, India

Correspondence
Dr. JR Kashyap
Associate Professor in Sanskrit, Govt. PG College Seema, Rohru, Distt. Shimla, Himachal Pradesh, India

युवाओं के प्रेरणास्रोत के रुप में नागानन्द नाटक के नायक की वर्तमान प्रासंगिकताः एक परिशीलन

Dr. JR Kashyap

प्रस्तावना

संस्कृत भाषा के महार्णव तुल्य विशाल वाङ्मय में नाट्य साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाट्य साहित्य ने देववाणी को अगणित विश्वविख्यात रचनाएं देकर उसे पुष्पित एवं पल्लवित करने में महनीय भूमिका निभाई है। ऐसी ही नाट्य कृतियों में महाकवि एवं महाराज हर्ष प्रणीत नाटक 'नागानन्द' एक है। अपने पांच अंकीय लघु कलेवर में यह नाटक जहां एक ओर मनोविनोद की पर्याप्त सामग्री संजोए हुये हैं वहीं दूसरी ओर इसमें मानवीय जीवन के विभिन्न पड़ावों के लिये उपादेय सिद्धान्तों का रहस्योद्घाटन भी सफलता के साथ हुआ है। नाटक के माध्यम से पाठकों/दर्शकों के समक्ष जिस जीवन दर्शन को उपस्थापित किया गया है उसमें भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का मूर्त रुप उभर कर सामने आया है। नाटकीय नायक के चरित्र को आधार बनाते हुये जीवन के प्रति एक सुनिश्चित एवं स्पष्ट दृष्टि को बड़ी कुशलता से लेखनी बद्ध किया गया है। युवावस्था के चरम पर अवस्थित होते हुए भी नाटकीय नायक के जीवन सिद्धान्त इतने परिपक्व हैं कि उनका अनुसरण तलवार की धार पर चलने से अंश मात्र भी न्यून नहीं है। इन सिद्धान्तों के प्रति उसकी अखण्ड श्रद्धा को देखकर आश्चर्य होता है। ये वे सिद्धान्त हैं जहाँ निःश्रेयस साधक श्रेयस्कर मार्ग का अनुसरण अभीष्ट है, जहाँ स्वार्थपरता का स्थान नगण्य है और केवल और केवल परहित सम्पादन जहाँ की प्राथमिकता है। इन सिद्धान्तों में प्राणि मात्र के प्रति मानवीय संवेदनशीलता एवं उत्सर्ग के भाव को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया गया है। एक साधारण नाग के जीवन की रक्षा के लिये नाटक के नायक का प्राणों की बाजी लगा देना उस पौराणिक घटना का स्मरण दिलाता है जिसमें एक कपोत की रक्षा करते हुए राजा शिवि अपने जीवन को दाँव पर लगा देते हैं। निश्चय ही 'नागानन्द' नाटक भी उस पौराणिक उद्घोष का अनुमोदन करता है जिसमें कहा गया है कि ''परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्''। नाटकीय नायक के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं सार्वजनिक जीवन में एक ऐसी विलक्षण आचारसंहिता के दर्शन होते हैं जिसमें मर्यादा है, समर्पण है और सर्वोच्च आदर्शों को जीने की अनूठी ललक है। नाटक के आलोक में इन्हीं प्रमुख बिन्दुओं का वैशिष्ट्य निम्नप्रकारेण प्रस्तुत किया जा रहा है–

व्यक्तिगत जीवन

जीमूतवाहन के व्यक्तिगत जीवन पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो कहा जा सकता है कि उसके आचरण में सर्वत्र मर्यादा की निरन्तरता दृष्टिगत होती है। उसके जीवन जीने के मापदण्ड महत्त्वपूर्ण जीवन मूल्यों पर अवलम्बित हैं। उसका व्यवहार कौशल अप्रतिम है। उसका कर्त्तव्य बोध श्लाघ्य है। उसकी परोपकारिता एवं संवेदनशीलता स्तुत्य एवं अतुल्य है तथा मर्यादित एवं मूल्य परक जीवन जीने की उत्कट अभिलाषा नितान्त अनुकरणीय है। उसकी मान्यताओं एवं उसके आचरण में जो परिपक्वता एवं प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उसके व्यक्तित्व में कहीं भी प्रेय–श्रेय की ऊहा–पोह नहीं दिखाई देती। श्रेय मार्ग का अनुसरण ही उसका अभीष्टतम् लक्ष्य है। वह सांसारिक उत्तरदायित्वों का भली प्रकार निर्वहण करता हुआ भी सांसारिकता के मोह पाश के बन्धन से परे हैं। वह सर्वथा निष्काम भाव से मनसा–वाचा–कर्मणा पारिवारिक एवं सार्वजनिक जीवन के समस्त कर्त्तव्यों को निभाता हुआ दिखाई देता है। सद्य अभिषिक्त युवराज के रुप में उसके समक्ष एक ओर अकूत सम्पत्ति एवं राज्य लक्ष्मी के सुखों को भोगने का स्वर्णिम अवसर उपलब्ध है तो दूसरी ओर कर्त्तव्य पथ एवं स्व निर्धारित उच्च आदर्शों के अनुसरण में आने वाली चुनौतियों का ताना बाना है। निश्चय ही ऐसी परिस्थितियों में श्रेयस्कर लक्ष्य एवं उस लक्ष्य तक पहुँचाने वाले सटीक मार्ग का निर्धारण केवल विवकेशील व्यक्ति ही कर सकता है।

जीमूतवाहन एक ऐसा नायक है जिसके व्यक्तिगत विचार एवं मान्यताएं बड़े उदात्त एवं उच्च आदर्शों से अनुस्यूत हैं। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण किसी निर्मल दर्पण की भाँति अत्यन्त स्पष्ट हैं। उसमें न तो किसी प्रकार के द्वन्द्वों का अवरोध है और न ही किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की बाधा। उसे युवावस्था की रजोगुणजन्य उन दुष्प्रवृत्तियों का भान है जो व्यक्ति को कल्याणकारी मार्ग से पथच्युत करके उसे सांसारिकता के भँवर जाल में भटका देती है।वह इस बात से भली भाँति परिचित है कि युवावस्था जहां एक ओर क्षणभंगुर है वहीं दूसरी और यह काम वासना का घर है। उसकी सम्मति में मानव जीवन के इस सुन्दरतम् काल में मनुष्य की प्रवृत्ति कुछ इस प्रकार की हो जाती है कि वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य का सम्यग् विवेचन नहीं कर पाता। वह अपनी विलक्षण मान्यताओं एवं जीवन दर्शन के अनुरूप यौवन के रमणीय काल को अपने माता–पिता के चरणों की सेवा करते हुए व्यतीत करना चाहता है[1]। उसकी अनन्य पितृभक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उसके उस कथन में देखने को मिलता है जिसमें वह कहता है कि पिता के समक्ष भूमि पर आसीन पुत्र सिंहासनारुढ़ पुत्र की अपेक्षा अधिक सुशोभित होता है। पिता के चरणों को दबाने का सुख राज्य सुख भोगने की तुलना में श्रेष्ठ होता है तथा पिता की जूठन के उपभोग का आनन्द त्रिभुवन के राज्य पालन एवं समस्त श्रेष्ठ भोग्य वस्तुओं के भोग के आनन्द से बढ़कर होता है। यहां तक कि माता–पिता के बिना राज्य चलाना उसे श्रम मात्र तथा भार स्वरूप ही प्रतीत होता है[2]। जीमूतवाहन के उक्त दोनों कथनों पर यदि गंभीर एवं सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो कहा जा सकता है कि ये उसकी आयु से मेल न खाने के कारण विलक्षण तो हैं ही साथ में उपादेयता की दृष्टि से सार्वभौमिक एवं सार्वदेशिक हैं। ये वे कथन हैं जो भारतीय संस्कृति के परम्परागत जीवन मूल्यों के संवाहक कहे जा सकते हैं। इनमें भौतिकता की चकाचौंध से दूर रहते हुए ''त्यक्तेन भुंजीथा'' और ''मातृदेवो भव, पितृदेवो भव'' जैसे शाश्वत मूल्यों को सफल अभिव्यक्ति दी गयी है। नाटक के नायक की यह विचारधारा इस बात की परिचायक है कि जहाँ एक ओर उसका सैद्धान्तिक ज्ञान उच्च स्तर का है वहीं दूसरी ओर उसके जीवन का व्यवहारिक पक्ष भी अत्यन्त सशक्त एवं सुदृढ़ दिखाई देता है। उसके व्यक्तित्व में इन दोनों (सिद्धान्त और व्यवहार) का अनूठा संगम दृष्टिगत होता है।

जीमूतवाहन के जीवन में परोपकारिता की भावना कूट–कूट कर भरी हुई है। उसके जीवन के लक्ष्यों में परोपकार एक प्राथमिक लक्ष्य है जिसका निर्वाह करने के लिये वह किसी भी सीमा तक जा सकता है। उसके लिये परोपकार की तुलना में जीवन का कोई महत्त्व नहीं है।''ननु शरीरात् प्रभृति सर्वम् परार्थमेव मया परिपाल्यते''[3] अर्थात् अपने शरीर से लेकर जो कुछ भी मेरे पास है, परोपकार के लिये ही रख छोड़ा है। ''स्वशरीरमपि परार्थे य खलु दद्यादयाचितः कृपया''[4] अथवा बिना माँगे दूसरों के हित के लिये अपनी जान तक दे सकता हूँ। उसकी सम्मति में ''एकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहितकरणायैव यस्य प्रयासः''[5] अर्थात् केवल भगवान् सूर्य ही एक धन्य है जिनका प्रयत्न सदैव दूसरों की भलाई करना ही है।नायक के ये कथन कहने मात्र के लिये नहीं है बल्कि वह इस पर अडिग रहते हुए आजीवन इसका पालन भी करता है। परोपकारिता की रट और उसे यथार्थ के धरातल पर उतारने का दृढ़ संकल्प उसे असाधारण नायकों की श्रेणी में अग्रिम पंक्ति में लाकर खड़ा कर देता है। उसके मन,वचन और कर्म में सदैव पर हित साधने की अकाट्य ललक भी उसे मानव से महामानव बनाती है। वह अनवरत रुप से किसी भी ऐसे अवसर की तलाश में रहता है जहाँ प्राणी मात्र के हितार्थ वह कुछ कर सके। परोपकार का अवसर न मिल पाने की स्थिति में उसका अन्तर व्यथित हो उठता है और उसके रोम रोम में अनूठी अकुलाहट व्याप्त हो जाती है। अरण्यवास करते हुए वन में अनायास उपलब्ध सुखों में एक टीस है जो उसके मर्म को आहत करती है। उसके ही शब्दों में ''वन में सारे सुख उपलब्ध है, दुःख केवल इतना ही है कि यहाँ कोई याचक नहीं मिलता जिससे परोपकार का अवसर नहीं मिल पाता।''[6] निश्चय ही किसी विशिष्ट गुण को साधने के लिये नायक का यह समर्पण अद्भुत एवं श्लाघनीय है। जैसे ही उसे परोपकार का अवसर उपलब्ध होता है वैसे ही उस पर मानों भूत सवार हो जाता है और उसे उस नव परिणीता पत्नी का भी स्मरण नहीं रहता जिसने कभी अपने सर्वातिशायी सौन्दर्य से उसकी हृत्तन्त्रियों को झंकृत किया था। उसे उन माता–पिता की भी सुध नही रहती जिन्हें वह आराध्य मानता है और जिनके प्रति उसके अन्तःकरण में अगाध श्रद्धा है। अपने तुच्छ स्वार्थ को अकिंचन मानते हुए वह निर्भीक भाव से परमार्थ के मार्ग का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर समझता है। जीमूतवाहन का चरित्र जहाँ एक ओर दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करता है वहीं दुसरी ओर उनके मानस पटल पर अमिट छाप छोड़ने में भी सफल रहा है। नाटक में उसके द्वारा निभाई गयी भूमिका वास्तव में जन साधारण को यही प्रेरणा देती है कि वे सतत रुप से अपनी मनोवृत्तियों का परिमार्जन करते रहें और इस भूमण्डल में विद्यमान सहजीवियों के प्रति सम्वेदनशील होकर उनके हितार्थ उद्योग करते रहें।

नागों की विपत्ति के विषय में जब उसे जानकारी मिलती है तो उसका संवेदनशील हृदय सिहर उठता है और उसकी संवेदनाएं आक्रोश का रुप धारण कर नागाधिराज वासुकी को कोसती हैं ''क्या दो हजार जीभों में से एक भी ऐसी जीभ नहीं थी जिससे वह कहता कि एक साँप की रक्षा के लिये गरुड़ के समक्ष मैंने अपने आप को समर्पित कर दिया।''[7] नागराज और गरुड़ के मध्य हुई सौदेबाजी से वह व्यथित हो उठता है और उसका पीड़ित अन्तर सहसा बोल उठता है–''अहो! कष्टमनवसानेयं विपत्तिर्नागानाम्''[8] अर्थात् नागों की यह विपत्ति अन्तहीन है। उसके मानस में बड़ा ही शुभ संकल्प जन्म लेता है–''अपि शक्नुयाम्यहं स्वशरीरसमर्पणेन एकस्यापि नागस्य प्राणपरिरक्षा कर्तुम्''[9] अर्थात् यदि अपनी जान देकर एक भी नाग का जीवन मैं बचा सकूँ तो कितना अच्छा होगा। आगे चलकर जब वह शंखचूड़ की माता के करुण विलाप को सुनता है तो उसके मन में नाग के स्थान पर गरुड़ के भोजनार्थ स्वयं को प्रस्तुत करने का संकल्प और भी अधिक दृढ़ हो जाता हैं। शंखचूड़ और उसकी जननी की अनूठी व्यथा से उसका ऐसा तादात्म्यभाव हो जाता है कि उसका अन्तर्मन कह उठता है–''यदि अपने बान्धवों से त्यागे गये, मरणासन्न इस कातर को मैं नहीं बचाता हूँ तो फिर इस विनाशशील देह से क्या लाभ?''[10] दूसरों के उपकार के लिये सर्वस्व त्यागने की उदात्त भावना में बेसुध जीमूतवाहन लाल वस्त्रों का चोला ओढ़कर वध्य शीला की ओर जाने के लिये उद्यत हो जाता है। उसकी हार्दिक प्रसन्नता की आज कोई सीमा नहीं है–''महतीं प्रीतिमाधत्ते परार्थे देहमुज्झतः''।[11] अपने अभिलषित प्रयोजन की सिद्धि के लिये वध्यशीला पर बैठने का आनन्द उसे सर्वातिशायी प्रतीत होता है।[12] इस आनन्द की अपेक्षा बाल्यावस्था में जननी के अंक में निःशंक लेटने के आनन्द को भी वह गौण मानता है।[13]

परमार्थ के लिये उसकी अनन्य आस्था की पराकाष्ठा उसके निम्न कथन में द्रष्टव्य हैः–

> संरक्षता पन्नगमद्य पुण्यं मयार्जितम् यत्स्वशरीरप्रदानात्।
> भवे–भवे तेन ममैव भूयात् परोपकाराय शरीरलाभः।।[14]

अर्थात् अपने शरीर का बलिदान कर सर्प की रक्षा करते हुए आज मैंने जो पुण्यार्जन किया है उससे जन्म–जन्मान्तर में परोपकार के लिये ही मुझे देह मिले। यही उसकी दानवीरता का उत्कृष्टतम् निदर्शन है। परहितार्थ प्रवृत्त हुआ नायक इतना भाव–विभोर हो उठता है कि विषम् से विषमतर परिस्थितियों में भी अपना धैर्य नहीं छोड़ता। गरुड़ नोच–नोच कर बड़ी निर्ममता से उसे खा रहा है किन्तु वह क्षण मात्र के लिये भी न तो आक्रोशित होता है और न उसके भयंकर चंचु प्रहारों की असह्य पीड़ा से अपने अभीष्ट लक्ष्य से ही विचलित होता हैं। गरुड़ को मांस काटने से विमुख होता

देख कर भी क्षत–विक्षत हुआ नायक अनूठी धैर्यशीलता का परिचय देते हुए उसे एतदर्थ उकसाता है जिससे उसकी क्षुधा शान्त हो सकेः–

> शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम माँसमस्ति।
> तृप्तिम् न पश्यामि तवाऽपि तावत् किं भक्षणात् त्वं विरतो गरुत्मन्।।[15]

अर्थात् धमनियों से अभी रक्त चू रहा है। मेरे शरीर में अभी भी माँस शेष है, तुम्हारा पेट भी नहीं भरा है। हे गरुड़! फिर क्या कारण है कि तुमने मुझे खाना बन्द कर दिया है। जीमूतवाहन की यह अपूर्व धैर्यशीलता एवं अहिंसा तथा उत्सर्ग का भाव ही है जो क्रूरतापूर्ण कार्यों में संलग्न गरुड़ के अन्तःकरण को झकझोर देता है और उसे अपने कुकृत्यों पर पहली बार पश्चाताप होता है। इस घटनाक्रम से दर्शकों/पाठकों को यह सीख मिलती है कि हम अपने अहिंसक एवं शान्तिपूर्ण व्यवहार से कुमार्ग पर भटक रहे व्यक्ति को भी सन्मार्गगामी बना सकते हैं।

पारिवारिक जीवन

जीमूतवाहन का पारिवारिक जीवन भी गुरुजननिष्ठा, समर्पण तथा त्याग जैसे महनीय गुणों से समन्वित है। उसके लिये माता–पिता ही उसके जीवन का सर्वस्व है। वानप्रस्थ आश्रम का सेवन कर रहे माता–पिता के प्रति उसका भक्तिभाव एवं समर्पण अप्रतिम है। उसके मन में उनके प्रति अथाह श्रद्धा एवं सम्मान है जिसका निर्वाह करने के लिये वह आजीवन कृतकार्य दिखाई देता हैं। माता–पिता की सेवा–शुश्रूषा की तुलना में संसार की समस्त सुख–सुविधाओं को वह अकिंचन मानता है। वंशानुक्रम से प्राप्त सुख सम्पदा को ठोकर मारकर वह अपने आराध्य माता–पिता की सेवा करने के लिये वन चला जाता है।[16] युवावस्था की निःसारता प्रतिपादित करते हुए वह उसे काम–वासना का घर तथा क्षण भंगुर मानता है। उसके विचारों में माता–पिता के चरणों की सेवा में व्यतीत करने में ही युवावस्था की सार्थकता है।[17] माता–पिता के सान्निध्य में जीवन व्यतीत करने के सुख को वह सर्वोपरि मानता है। उसकी यह दृढ़ मान्यता है कि पिता के समक्ष राज सिंहासन पर बैठे हुए पुत्र की अपेक्षा भूमि पर आसीन पुत्र की शोभा अधिक होती है। राज्य सुखों की अपेक्षा पिता के चरणों को दबाने में उसे अधिक सुख की अनुभूति होती है। तीनों लोकों में उपलब्ध होने वाली भोग्य वस्तुओं के उपभोग की तुलना में वह पिता की जूठन के उपभोग को बढ़कर मानता है।[18]एक अद्वितीय पितृभक्त की सशक्त भूमिका में जहाँ एक ओर जीमूतवाहन दर्शकों में अपनी एक पृथक पहचान बनाने में सफल रहा है वहीं दूसरी ओर इसके माध्यम से उसने एक सुन्दर संदेश को प्रेषित करने का भी सफल प्रयास किया है। परिवार समाज की प्रथम इकाई है और उस इकाई का मूल माता–पिता होते हैं। नाटक के नायक ने हमें यही सन्देश दिया है कि परिवार और उसके मूल को सहेजना अनिवार्य है। वृद्धावस्था को प्राप्त हुए बुजुर्गों को उनके हाल पर छोड़ना उचित नहीं है। युवा पीढ़ी का यह सर्वप्रमुख कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे अपने माता–पिता का अवलम्ब बनें और उन्हें एकांकी जीवन जीने के लिये विवश न करें।

सामाजिक जीवन

जीमूतवाहन के सामाजिक जीवन पर यदि दृष्टि डाली जाए तो कहा जा सकता है कि युवावस्था में ही अपने चारित्रिक गुणों से उसने समाज में अपनी पहचान बना ली है। उसके गुणों से अभिभूत हुए समाज के लोग उसे आदर के भाव से देखते हैं और नाटक में सिद्ध राजकुमार मित्रावसु के मुख से उसका गौरवपूर्ण परिचय इस प्रकार करवाया गया है–जीमूतवाहन विद्याधरों के राजवंश का भूषण है, बुद्धिमान है, सत्पुरुषों से समादृत हैं, सुन्दरता में अद्वितीय, पराक्रम में धनी, विद्वान्, विनम्र एवं नौजवान है।[19] जीमूतवाहन एक सच्चा सामाजिक है जो सतत रुप से समाज और सामाजिक सरोकारों के प्रति पूर्णतया सचेत एवं सम्वेदनशील है। प्राणि मात्र के हित साधने के लिये वह सदैव तत्पर रहता है। सम्पूर्ण समाज उसकी अनूठी परोपकारिता से अवगत है। ''यच्चासूनपि सन्त्यजेत् करुणया सत्त्वार्थमभ्युद्यतः। तेनास्मै ददतः स्वसारमतुला तुष्टिर्विषादश्च मे।''[20] यह कथन उस भाई का है जो उसके साथ अपनी बहन का विवाह करवाना चाहता है किन्तु परमार्थ के लिये अपने प्राण तक न्यौछावर करने का उसका निःस्वार्थ और निःसंग भाव उस भाई के समक्ष क्षण भर के लिये नैतिक संकट की स्थिति उत्पन्न कर देता है। एक सच्चे सामाजिक प्राणी के रुप में वह बिन मांगे ही दूसरों के लिये अपना सर्वस्व त्याग सकता है तथा प्राणी वध जैसे क्रूर कर्म को तो वह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता चाहे कोई उसके राज्य को ही छीनने का प्रयास क्यों न करे।[21] वह मानसिक दोष जन्य अन्तः क्लेशों को ही अपना शत्रु मानता है। इसके अतिरिक्त वह किसी को अपना शत्रु नहीं मानता है।[22]इस प्रकार की उदात्त मान्यताएं उसके चारित्रिक उत्कर्ष का सुन्दरतम् निदर्शन प्रस्तुत करतीं हैं। इसी प्रकार व्यवहारिक जीवन में उसकी सहृदयता एवं सम्वेदनशीलता भी प्रशंसनीय है। नागों पर आई विपत्ति उसके हृदय के अन्तःतल को झकझोर देती है और उसके प्रतिकार के लिये जान को जोखिम में डालते हुए वह परमुखापेक्षी न होकर स्वयं को पस्तुत करता है। ऐसा करते हुए उसके मन में न ता किसी प्रकार का भय या संकोच है और न ही कोई पश्चाताप बल्कि उसका रोम–रोम रोमांच और अभूतपूर्व प्रसन्नता का अनुभव करते हुए कह उठता है–''महतीं प्रीतिमाधत्ते परार्थे देहमुज्झतः''[23]अर्थात् दूसरों के उपकार के लिये अपनी जान देते हुए मुझे आज प्रसन्नता हो रही है। निश्चय ही अपने सदाचरण से उसने समाज में त्याग और परोपकारिता का सर्वोत्तम मापदण्ड स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त नित्यप्रति के व्यवहारों में भी उसकी व्यवहारिक कुशलता के पर्याप्त दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। समाज में प्रचलित रीति–रिवाजों एवं वर्जनाओं का उसे पूरा ध्यान रहता है। मन्दिर परिसर से गुजरते वह देवता का अभिवादन करना नहीं भूलता–''वन्द्याः खलु देवता''।[24]वह पराई स्त्री को देखना वर्जित मानता है–''कदाचित् द्रष्टुमनर्होऽयं जनः''।[25] ये उस समय के उद्‌गार हैं जब उसे मालूम पड़ता है कि मन्दिर के अन्दर कोई स्त्री गा रही है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि मन्दिर में गाने वाली कोई कन्या है तो वह सहसा कह उठता है कि ''निर्दोषदर्शना कन्यकाः भवन्ति''।[26]विविध शकुनापशकुनों की भी उसे समझ है। मलय पर्वत के एक तपोवन की ओर जाते हुए उसकी दाईं आँख फड़क उठती है। इस संकेत को वह भली भाँति समझते हुए कहता है कि यद्यपि उसे इसके फल की कोई चाह नहीं है फिर भी मुनियों का वचन झूठा नहीं होता है।[27] जब उसकी भेंट किसी तापस से होती है तो वह उन्हें प्रणाम करना नहीं भूलता–''जीमूतवाहनोऽभिवाद्यते''।[28] जीवन से जुड़े प्रत्येक विषय के प्रति जीमूतवाहन का दृष्टिकोण एक दम स्पष्ट एवं पारदर्शी है। इस बात का उदाहरण उस समय देखने को मिलता है जब मित्रावसु अपनी भगिनी के विवाह का प्रस्ताव लेकर जीमूतवाहन के पास आता है। वह मित्रावसु के इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है क्यों कि उसकी अखण्ड मान्यता है कि ''न शक्यते चित्तमन्यतः प्रवृत्तमन्यतः प्रवर्त्तयितुम्''[29]अर्थात् किसी एक जगह लगे मन को दूसरी जगह नहीं लगाया जा सकता। उपर्युक्त छोट–छोटे प्रसंगों से स्पष्टरुपेण ज्ञात होता है कि जीमूतवाहन अपने सभी सामाजिक व्यवहारों पर पैनी दृष्टि रखता है और कभी भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है।

सार्वजनिक जीवन

सार्वजनिक जीवन में राजा के रूप में वह उतना ही सफल है जितना व्यक्तिगत,पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में है। जिस श्रद्धा भाव से वह परोपकार जैसे उत्कृष्ट गुणों की सिद्धि में लीन है तथा अपने माता–पिता के चरणों की सेवा में संलग्न है उसी भाव

एवं तन्मयता से वह प्रजानुरंजन में भी दत्तचित्त है। प्रजा के लिये करणीय सभी कार्यों का निष्पादन करने में वह कभी भी प्रमाद प्रदर्शित नहीं करता है, उसकी प्रजा पूर्णतया न्याय के मार्ग का अनुसरण करती है, राज्य के सज्जन सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं, राज्य में सभी बन्धु–बान्धवों को समानता का दर्जा प्राप्त है, उसने अपने पराक्रम एवं बाहुबल से साम्राज्य को चारों ओर से सुरक्षित कर लिया है तथा इच्छा से भी अधिक देने वाला कल्प वृक्ष याचकों को दे दिया है[30]। उक्त कथन के माध्यम से स्पष्ट रुपेण यह द्योतित होता है कि वह प्रजानुरंजन को ही अपना सर्वप्रमुख कर्त्तव्य मानता है। गरुड़ के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए भी जीमूतवाहन यही सन्देश देना चाहता है कि प्रजा पर आने वाली विपत्ति का प्रतिकार करने के लिये राजा को सर्वप्रथम स्वयं को ही प्रस्तुत करना चाहिए।

निष्कर्ष

अन्त में निष्कर्षरुपेण ही कहा जा सकता है कि 'नागानन्द' नाटक के रचयिता ने नाटकीय नायक के चरित्रांकन में अद्भुत रचना कौशल का परिचय दिया है। परोपकार, त्याग, गुरुजननिष्ठा एवं मूल्यपरक जीवन जीने का संकल्प जैसे उदात्त भाव जीमूतवाहन के व्यक्तित्व को युवाओं के प्रेरणा स्रोत के रुप में उपस्थापित करते हैं। वर्तमान युवा भी यदि अपने तुच्छ स्वार्थों को भूल कर परमार्थ को जीवन का अभिन्न अंग बनाए तो इस विशाल देश के असंख्य वंचितों का कल्याण हो सकता है। यदि वे अपने व्यवहारिक जीवन को अधिक से अधिक मर्यादित एवं शालीन बनाने का दृढ़निश्चय करें तो हमारे समाज में सतत रुपेण वृद्धि को प्राप्त हो रहे चौर्य, विलुण्ठन, अपहरण, यौनापराध एवं हिंसा आदि अवांछनीय कुकृत्यों का निवारण हो सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. नागानन्द 1.6
2. वही 1.7
3. वही पृ. 17
4. वही 3.17
5. वही 2.18
6. वही 4.2
7. वही 4.5
8. वही पृ. 165
9. वही पृ. 165
10. वही 4.11
11. वही 4.21
12. वही 4.23
13. वही 4.24
14. वही 4.26
15. वही 5.16
16. वही 1.5
17. वही 1.6
18. वही 1.7
19. वही 2.10
20. वही 2.10
21. वही 3.17
22. वही पृ. 148
23. वही 4.21
24. वही पृ. 29
25. वही पृ. 29
26. वही पृ. 33
27. वही 1.10
28. वही पृ. 47
29. वही पृ. 90
30. वही 1.8